**ओ३म्**

**‘मनुष्य और उसका धर्म’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

संसार के सभी मनुष्य अपने-अपने माता-पिताओं से जन्में हैं। जन्म के समय वह शिशु होते हैं। इससे पूर्व 10 माह तक उनका अपनी माता के गर्भ में निर्माण होता है। मैं कौन हूं? यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न है। मैं वह हूं जो अपनी माता से जन्मा है और उससे पूर्व लगभग 10 माह तक गर्भ में रहा है। माता के गर्भ में यह कैसे आया यह भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। इस प्रश्न के उत्तर को ढूढ़ने से पूर्व हम यह देखते हैं कि जब वृद्धावस्था आदि में मनुष्य की मृत्यु होती है तो वस्तुतः होता क्या है? पृथिवी, अग्नि, जल, वायु और आकाश नामी पंच-भूतों से निर्मित उसका जड़ शरीर हमारे सामने होता है जिसका शास्त्रीय व लोक नियमों के अनुसार दाह संस्कार कर दिया जाता है। अनेक देशों में मृतक शव को दफनाने की प्रथा भी विद्यमान है। मृत्यु से पूर्व तक जड़ शरीर में एक चेतन तत्व भी होता है जो शरीर से निकल जाता है जिससे उस मनुष्य व उसके शरीर की मृत्यु कही जाती है। वह चेतन तत्व क्या है, आईये, विचार करते हैं। मृत्यु से पूर्व मनुष्य के शरीर में हम ज्ञान व क्रियाओं वा कर्मों की निरन्तरता को बना हुआ देखते हैं जो मृत्यु होने पर बन्द हो जाती है। शरीर की संवेदनायें समाप्त हो जाती है और वह पूर्णतः निष्क्रिय हो जाता है। अतः यह सिद्ध होता है कि जीवित अवस्था में शरीर में ज्ञान व क्रियायें किसी एक चेतन सत्ता की विद्यमानता के कारण हो रही थी जिसके न रहने, निकल जाने या शरीर छोड़ कर चले जाने पर वह पूर्णतः बन्द हो गई। अतः शरीर में दिखने वाला ज्ञान व क्रियायें एक चेतन तत्व अर्थात् जीवात्मा की उपस्थिति का प्रमाण होने के साथ यह दोनों ज्ञान व क्रियायें=कर्म, जीवात्मा का स्वभाव वा स्वाभाविक गुण हैं। जीवात्मा के स्वाभाविक ज्ञान व क्रियाओं को जानने के बाद आईये, जानते हैं कि जीवात्मा के अन्य गुण वा उसका स्वरूप कैसा है? हम सभी अनुभव करते हैं कि जीवात्मा शरीर तक ही सीमित है। अतः जीवात्मा अल्प परिमाण वाली एवं एकदेशी सत्ता है। अल्प परिमाण एवं एकदेशी सत्त अल्प शक्ति वाली ही हो सकती है। हम यह भी देखते हैं कि हम और अन्य सभी प्राणी दुःख, रोग व मृत्यु से भयभीत होते हैं। अतः यह हमारी अल्प शक्ति के साथ परतन्त्रता को भी सिद्ध करता है। प्रश्न उपस्थित होता है कि हमें दुःख, रोग व मृत्यु किससे मिलता है? उत्तर प्राप्त होता है कि इसका कारण हमारा अज्ञान व हमारे अज्ञान-जनित कर्म होते हैं। अज्ञान का कारण हमारी अल्पज्ञता है जिसे सर्वज्ञ ईश्वर एवं ज्ञानी गुरूओं का सान्निध्य प्राप्त कर दूर किया जा सकता है। मनुष्य जब सर्वज्ञ ईश्वर के सान्निध्य को प्राप्त करता है और स्तुति, प्रार्थना व उपासना करता है तो इसके प्रभाव से धीरे-धीरे उसकी आत्मा, मन, बुद्धि व अन्तःकरण के मल छटने वा दूर होने आरम्भ हो जाते हैं। निरन्तर अभ्यास से आत्मा आदि के मल दूर हो जाने से वह निर्मल होकर ईश्वर व आत्मा में स्थिति को प्राप्त करता है। इस अवस्था में पहुंचने पर उसे दुःख, रोग व मृत्यु आदि का भय समाप्त हो जाता है। संसार में जहां भी मनुष्य निवास करता है, वह किसी भी मत, सम्प्रदाय, मजहब का अनुयायी हो, परन्तु उसके समस्त दुःख व भय आदि केवल व केवल ईश्वर की उपासना से ही दूर हो सकते हैं। **‘नान्यः पन्था विद्यते अयनायः’** अर्थात् इन मलों को दूर करने का अन्य कोई उपाय नहीं है।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि जीवात्मा, सत्य, चित्त, एकदेशी, अल्पज्ञ, कर्म करने में स्वतन्त्र व फल भोगने में परतन्त्र है। योग विधि से स्तुति, प्रार्थना व उपासना व वैदिक ग्रन्थों का अध्ययन वा स्वाध्याय करके वह अपनी अज्ञानता व अविद्या को दूर करके विवेक को प्राप्त होकर दुःखों से मुक्त होता है। दुःखों के साथ-साथ वह जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष अर्थात् मुक्ति को भी प्राप्त हो जाता है और नियत अवधि तक मुक्ति का सुख भोगता है।

जीवात्मा का स्वरूप जान लेने के पश्चात प्रश्न आता है कि जीवात्मा अपनी उन्नति, प्रगति व उत्थान के लिए क्या करे? जीवात्मा को जब अपने स्वरूप का ज्ञान होता जाता है तो इसके साथ ही साथ परमात्मा का भी ज्ञान हो जाता है। कारण यह है कि ज्ञान प्राप्त होने पर जीवात्मा यह जान जाता है कि यह कार्य जगत अथवा विशाल सृष्टि उसे बनी बनाई मिली है जिसे संसार में विद्यमान दूसरी सर्वव्यापक चेतन सत्ता, ईश्वर ने बनाया है। ईश्वर व स्वयं को जानकर जीवात्मा को यह ज्ञान भी हो जाता है कि उसे भोगों का त्याग पूर्वक उपभोग करना है। इसके अतिरिक्त जो ज्ञान उसने गुरूओं, वृद्धों, सृष्टि के दर्शन व चिन्तन-मनन-ऊहा करके प्राप्त किया है उसे अज्ञानियों व अल्पज्ञानियों में फैलाना है। उसे इसकी प्रेरणा सूर्य, वायु, जल व नदी-समुद्र-वर्षा, वृक्ष आदि सभी से मिलती है। सूर्य के पास प्रकाश है, वह उसे अपने पास न रखके पूरे सौर्य मण्डल में फैला रहा है। नदिया व समुद्र अपना जल अपने पास नहीं रखते अपितु उसे वाष्प बना कर वायु में उड़ा देते हैं जो वर्षा के द्वारा असंख्य लोगों को लाभ पहुंचाता है। नदियों का जल किसानों द्वारा खेती में उपयोग किया जाता है व नदी के आस-पास बसे ग्राम व नगर के लोग, जल की अपनी भिन्न- भिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति में करते हैं। इसी प्रकार वृक्ष, ओषधियां, दुधारू पशु, भूमि आदि सभी परोपकार-यज्ञ कर रहे हैं जिससे संसार चल रहा है। यह सब जीवात्मा को परोपकारमय जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देते हैं। इनका मनन कर मनुष्य अपने जीवन का उद्देश्य ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना, ध्यान, परोपकार एवं यज्ञ आदि करना निश्चित करता है। यही जीवात्मा वा मनुष्यों का कर्तव्य व धर्म भी है। इन कार्यो को करते हुए वह अपने पुर्व किये हुए कर्मो को भोगेगा व आगे के लिए नये कर्मों को करके प्रारब्ध तैयार करेगा। जड़ पदार्थ परोपकार कार्यो में संलग्न हैं तो बुद्धिमान जीवात्मा इस कार्य में पीछे कैसे रह सकता है?

इस संक्षिप्त लेख में जीवात्मा के स्वरूप व उसके कर्तव्य-धर्म का संक्षेप में विचार किया है। मनुष्य को अपने जीवन के सभी प्रश्नों के उत्तर व जीवन के उद्देश्य की पूर्ति के साधनों एवं उपायों को जानने के लिए महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ का आश्रय लेना चाहिये। इस ग्रन्थ में मनुष्य जीवन से सम्बन्धित सभी प्रश्नों का सत्य व यथार्थ समाधान विद्यमान है। विगत 140 वर्षों में संसार के करोड़ों लोगों द्वारा इस ग्रन्थ में प्रस्तुत विचारों से लाभ उठा कर अपने जीवनों को संवारा जा चुका है।

**- मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2,**

**देहरादून-248001**

**फोनः 09412985121**